काया है अज्ञान में,
पलटत शुद्ध स्वरूप ।
नाटकजगव्यवहारहो
जब जानत निज रूप॥

परमहंस श्री स्वामी योगानन्दजी (आबू वाले बाबा).

परमपूज्य श्रीगुरुदेव परमहंस श्री १०८

स्वामी योगानन्दजी के

चारु चरण कमलों में

*** सादर समर्पित ***

आप ही परम शांति के देने वाले, आप ही का यह दिव्य ज्ञान है और आप ही की कृपा से इसकी प्राप्ति हुई है।

अतः आपकी बात को जो कुछ उल्टा सीधा समझा हूँ वह आपको ही सुनाता हूँ और आशा करता हूँ कि आप ठीक ठीक समझाने की कृपा करेंगे।

आपका शरणागत—

आत्माराम।

प्रस्तावना ।

इस संसार के विचित्र रंग मञ्च पर नित्य प्रति नये २ पात्र और घटनाओं के होने के कारण सैकड़ों शंकाओं ने आकर मेरे चित्त को व्याकुल कर दिया तब अपनी सब शंकाओंको एकत्रित करके उनके सामाधान के लिये कई पुस्तकों को पढ़ा और योग्य महात्माओं के पास जा जाकर सत्संग भी किया। इस प्रकार करने से जो मेरी समझ में आया उनको मैंने एक पुस्तक के रूप में लिख लिया जिससे अत्यन्त लाभस्वरूप चित्त में शान्ति प्राप्त हुई।

वेदान्त विषय को भली प्रकार से समझाने वाली भाषा में कई उत्तम पुस्तकें हैं परन्तु मैंने जो इस पुस्तक को लिखा अपने निमित्त ही लिखा है कि इसकर मेरा श्रवण मनन दृढ़ होकर मुझे परम शांति की प्राप्ति हो। अपने कई हितकर सज्जनों के आग्रह से उसी विचारों को नाटक रूप में लेकर आपके सन्मुख आने का उत्साह किया है।

संसारिक विषयों से भिन्न विषय होने से, जल्दी समझ में आजाय इस प्रकार रुचिकर बनाकर नाटक के रूप में लिखा गया है।

इस पुस्तक में जिन जिन कविताओं का उपयोग किया है उनके कर्ताओं का मैं आभारी हूँ। जीवको राजा बुद्धि को रानी मन को मंत्री इस प्रकार रूपक से समझाया गया है। मेरे वास्तविक आशय को समझ कर पाठक मेरी त्रुटियों को क्षमा करेंगे।

भवदीय—

आत्माराम।

निम्न लिखित विषयों पर

विचार किया गया है ।:

तू कौन है ?
स्थूल क्रिया द्वारा आनन्द,
सुंदरता आदिका वास्तविक स्रोत ।
आनन्दका घर आत्मा निज स्वरूप ही है ।
सूक्ष्म कृपा (मानसिक) द्वारा आनन्द प्राप्त करने का वहम । क्या वेदान्ती व्यवहारमें रूखे (निष्ठुर) होजाते हैं ? निडर होनेकी वजह से क्या ज्ञानी बुरा काम कर सकता है ? क्या शुभ कर्म करने को डर की आवश्यकता है ? ईश्वर ने बुरी चीजें क्यों बनाई ? उन्नति में दुख की आवश्यकता । प्रारब्ध समझने का स्वाभाविक उदाहरण ।
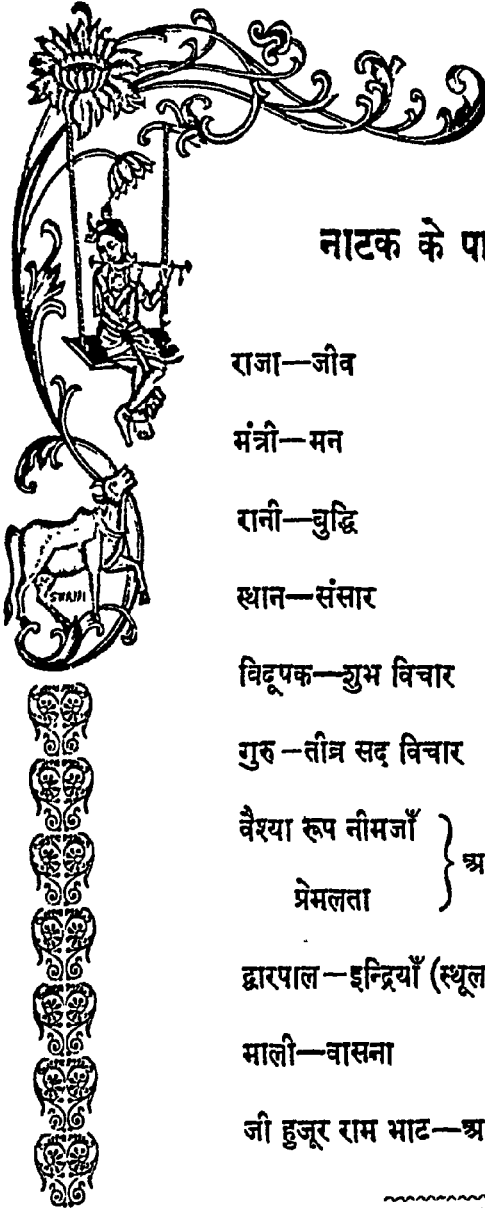
नाटक के पात्र ।

राजा—जीव

मंत्री—मन

रानी—बुद्धि

स्थान—संसार

विदूषक—शुभ विचार

गुरु—तीव्र सद् विचार

वैश्या रूप नीमजाँ, प्रेमलता } अविद्या

द्वारपाल—इन्द्रियाँ (स्थूल ज्ञान इन्द्रियां)

माली—वासना

जी हुजूर राम भाट—अशुभ विचार

* काया पलट नाटक *
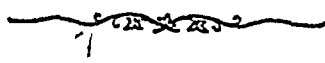
दृश्य पहला ।

स्थान—मनमोदक बाग, ऋतु वसंत समय
सन्ध्याकाल ।

द्वारपाल—सावधान (सँभल जाओ) महाराज आते हैं ।

माली—बहुत अच्छा, हम सब भी अपने काम पर जाते हैं ।

(राजा का मनमोदक बाग़ में प्रवेश, साथ में रानी और मंत्री, जी हुजूर वाले राय भाट और विदूपक आदि उपस्थित हैं राजा बाग़ में टहलने लगे ।)

मन्त्री—अहाहा ! यह कैसे सुंदर फूल खिले हुये हैं वृक्ष कैसे सुन्दर रंग विरंगे पुष्प लताओं से सुशोभित हैं वाह ! (गाता है)

फूल रहे हैं फूल सुहाये गगन चन्द्र है उदित मनोहर ॥
उड़े जारहे उजले बादल नील वायु मंडल के अन्दर ।
करें कलोल कोकिला वन में रह रह कर बोलें मीठे स्वर ॥१॥
सिरिस आम की मंजु मंजरी महक रही हैं मस्त चराचर ।
उसे लिये यह हवा आरही मंद चाल से अठखेली कर ॥२॥

ऐसे दिनमें वैठ इस जगह यह उमंग ऐसे अवसर पर।
मन भाये प्यारे विन कैसे रहा जाय जीते जी दम भर ॥३॥

विदूषक—(गाता है)

जिसको प्यारा सत्‌चित् आनंद अजर अमर नित सुख दाता।
वह सज्जन कुल दीप उजागर मनुष्य जन्म का फल पाता ॥
जिसै तृप्ति की आशा में फँस विपयानंद ही मन भाता।
हाय २ कर वह मूरख वश चिन्ताग्नि में जल जाता ॥

मंत्री—हट गधे हमारे सामने ही तान तोड़ता है ?

विदूषक—गधे को दिया नोंन गधे ने कहा मेरी आँख फोड़ता है ?

राजा—मन्त्री चलो, अब काफी टहल चुके अब थोड़ा विश्राम करलें।

(यह कह कर सब संगमरमर के चबूतरे पर पड़ी हुई कुर्सियों पर वैठ गये।)

द्वारपाल—(हाथ जोड़कर) महाराज नीमजान आपके दर्शनों को उत्सुक है।

राजा—(प्रसन्न होकर) जा शीघ्र बुला ला।

(चोवदार का सलाम करके जाना और नीमजान को साथ लेकर आना नीमजान का राजा को हाथ जोड़ सलाम कर वैठ जाना।)

राजा—कहो कैसे आना हुआ ?

नीम०—महाराज खूब पूछते हो न जाने महाराज को धोखा देना किसने सिखाया है ?

राजा—(हँस कर) नहीं मैं वाक़ई आने को था परन्तु एक आवश्यकीय कार्य के कारण रुकना पड़ा ।

नीम०—सत्य है महाराज, आपको सब कुछ शोभा देता है ।

राजा—अच्छा तो कोई रोचक चीज़ (गाना) होने दो फिर देखा जायगा ।

नीम०—जो आज्ञा ।

(यह कह कर गाने को तैयार होती है और साजिंदे काम क्रोध मद लोभ मोह आदि भी अपना बाजा बजाने लगें)

गज़ल ।

इकलख़्त ही घनश्याम ने जो बढ़ा के प्यार घटा दिया ।
अर्शे मोह्ला पर चढ़ा मुझे फिर ज़मीं पर गिरा दिया ॥१॥
जीने पै ऐसे ख़ाक है ग़म से कलेजा चाक़ है ।
नाम ख़ासुल्ख़ास में लिखकर उन्होंने मिटा दिया ॥२॥
क्या शौक़ था मेरी दीद का आँखों से रखते थे मुझे ।
अब ख़्वाबमें मिलते नहीं क्या जाने किसने सिखा दिया ॥३॥
मुझ से सखीरी श्याम ने उल्फ़त का रिश्ता तोड़ कर ।
अब तार आमदरफ़्त का कुबरी के घर में लगा दिया ॥४॥
मेरा विर्द उनका नाम है कोई कुछ कहे क्या काम है ।
मुझे याद उनकी मुदाम है उन्होंने मुझको भुला दिया ॥५॥

—राधेश्याम ।

मंत्री—वाह ! वाह ! क्या कहना !

राजा—(प्रसन्न होकर) नीमजान तुम तो मर्म भेदी वाण मारती हो ।

नीम०—तो क्या मैं झूँठ कहती हूँ महाराज ?

राजा—(हँस कर) अच्छा और कहो, मगर जरा रहम करना ।

(नीमजान हँसती हुई अपने साजिंदों को संकेत करती हुई गाना आरंभ करती है)

गजल ।

जहाँ की नजर है तुम पर वह महबूबे जहां तुम हो ।
मुहब्बत से तसव्वुर में जहां देखा वहां तुम हो ॥१॥
गुजारी उम्र हमने जुस्तजू में आपकी लेकिन ।
रहे कैसे अलग हम से हमारे मिहरवाँ तुम हो ॥२॥
तुम्हारे हुस्न की तोसीफ़ हम से हो नहीं सकती ।
उड़ा लेते हो दिल बातों में ऐसे दिल कुशा तुम हो ॥३॥
नजर आते नहीं जब ढूंढ़ते हैं हम कहीं तुमको ।
रहा करते हो दिलमें लेकिन आँखों से निहाँ तुम हो ॥४॥
रहैगी बाद मुर्दन भी तुम्हारी आरजू दिल में ।
यह रूहे पाक जावेगी वहाँ प्यारे जहाँ तुम हो ॥५॥

—राधेश्याम

मंत्री—क्यों न जावेगी इश्क इसीका नाम है ।

राजा—(नीमजानकी ओर मुखातिब होकर) वाह नीमजान तुम तो कमाल करती हो।

मंत्री—वाह प्यारी तुम बिन ऐसा सुख हम कहां पावेंगे।

विदूषक—वाह मीठी विष भरी, खूब फाँसा अब मुन्ना कहां जावेंगे ?

राजा—सरकारी कोपसे १०००) नीमजानको हमारी तरफ़ से दो।

मंत्री—बहुत अच्छा महाराज परन्तु..............

राजा—अच्छा दो हज़ार सही।

मंत्री—जो आज्ञा।

(यह कहकर २०००) के नोट नीमजानके हवाले करता है)

नीम०—(हाथ जोड़कर) मैं इसकी भूँखी नहीं मैं तो........

(नीची निगाह डालती है)

विदूषक—(नीमजान के सीने के पास कान लेजा कर और फिर हटकर कहता है) महाराज मनमें यों कह रही है कि मैं तो आपके जानो माल की भूँखी हूँ।

राजा—'मैं तो' क्या, आगे कहो शरमाओ नहीं।

नीम०—मैं तो महाराज के चरणों में रहना चाहती हूं।

विदूषक—(उंगली दिखाकर) देखलो बात बनाली (सिर हिलाकर) खूब जाल जानती हो अकेली बे खौफ़ डाका डालती हो

राजा—अच्छा नीमजान, यह तो ले लो उसके लिये भी तैयार हूँ।

(नीमजान नोट ले लेती है)

द्वारपाल—(हाथ जोड़कर) महाराज एक साधु आपसे मिलने को खड़ा है।

राजा—(नाक मुँह सिकोड़ता है)

मंत्री—यह पंचामृत में सोडा वाटर कैसा ? अच्छा बुला लाओ।

(चोवदार जाता है और साधु के साथ वापिस आता है)

साधु—राजन् ! भिक्षाकी इच्छा है।

राजा—बाबा खूब मोटे हो कोई काम काज नहीं करते वृथा गृहस्थों को कष्ट दिया करते हो अच्छा कुछ सुनाओ, कुछ तो परि-श्रम करो कि वैसे ही ढोंग बनाये फिरते हो।

(साधु का गाना)

गाना ।

जो आशिक़ हैं वह जाने हैं यह भेद फ़क़ीरी है बाबा।
हर आन हँसी हर आन खुशी हर वक्त अमीरी है बाबा॥
जब आशिक़ मस्त फ़क़ीरी हुये फिर क्या दिलगीरी है बाबा।
है आशिक़ और मासूक़ जहां वहां शाह वज़ीरी है बाबा॥
ना रोना है ना धोना है ना दर्द असीरीं है बाबा।
दिन रात बहारें चोहले हैं और इश्क़ सफ़ीरी है बाबा॥१॥

इश्क़ राह उसीसे रखते हैं फिर और किसी से राह नहीं ।
कुछ मरने का संदेह नहीं कुछ जीने की परवाह नहीं ॥
कुछ जुल्म नहीं कुछ जोर नहीं कुछ दाद नहीं फरयाद नहीं ।
कुछ क़ैद नहीं कुछ बंद नहीं कुछ जबर नहीं आज़ाद नहीं ॥
शागिर्द नहीं उस्ताद नहीं वीरान नहीं आबाद नहीं ।
हैं जितनी बातें दुनियाँ की सब भूल गये कुछ याद नहीं ॥
जो आशिक़ हैं० ॥२॥

मंत्री—(राजा की ओर देखकर) देखिये राजन् कैसा गधे की भांति मुँह फाड़कर रेंक रहा है ।

राजा—अजी कुछ नहीं सरासर आँखों में धूल फेंक रहा है ।

विदूषक—मानो कौओं में हंस फँस रहा है ।

राजा—बाबा, अगर ऐसे ही संतोषी हो तो दर २ मारे २ क्यों फिरते हो ?

साधु—अच्छा बाबा (यह कह कर मुस्कराते हुये चले जाना)

राजा—(मंत्री की ओर देख कर) देखा आपका क्रोध ।

मंत्री—टलने दो ऐसे अकड़खां को महाराज ।

(इतने में रात्रि के नो बजे का घंटा बजा)

राजा—ओहो ! (नौ बज चुके चांदनी रात के कारण समय जान नहीं पड़ा अब चलना चाहिये । (यह सुन कर सब उठ कर चलते हुये)

दृश्य दूसरा ।

स्थान—राजसभा समय—प्रातःकाल नव बजे ।

(राजा सुवर्ण के सिंहासन पर रानी सहित सुशोभित है मंत्री और अन्य सभासद अपने २ आसनों पर डटे हुये हैं प्रेमलता नाम की वैश्या अपने साजिंदों के साथ महाराज की आज्ञा की बाट देख रही है)

राजा—प्रेम, कुछ गाना सुनाओ जिससे चित्त प्रसन्न हो ।

प्रेम०—जो आज्ञा महाराज की (गाती है)

लावनी ।

बुरा अब हम उसको क्या कहेंगे जिसे कि अच्छा बता चुके हैं ।
हजारों परदों में ढूंढ़ करके किसी को अपना बना चुके हैं ॥
लगन थी जिसकी हमारे दिल में उसी को अपना बता चुके हैं ।
कभी न भूलेंगे तुमको दिलवर यह हम कसम कबकी खाचुके हैं ॥
तेरे ही हाथों है मुंसफी अब हम अपनी गर्दन झुका चुके हैं ।
हमें न महलों मकां की ख्वाहिश हम अपना मंदिर सजा चुके हैं ॥
ली खींच आइने दिल में सूरत पुतलियों में बिठा चुके हैं ।
महव हुये हैं यहां तलक हम कि अपना आपा भुला चुके हैं ॥

—राधेश्याम

राजा—प्रेम तुम धन्य हो, तुम सदैव मेरे चित्त को प्रसन्न किया करती हो अच्छा कुछ और कहो ।

विदूषक—(प्रेमलता से) जब तक यह लोग खुशी मनालें तब तक लाओ मैं तुम्हारी दशा पर आँसू बहा लूँ।

मंत्री—तू बड़ा दुष्ट है रे।

विदूषक—केवल इस कारण कि सच कह देता हूँ।

मंत्री—सच की इसमें कौनसी बात है।

विदूषक—अक़्लमन्दों को इशारा काफ़ी होता है परन्तु तुम जैसों को तो समझाना ही पड़ेगा, लीजिये सुनिये। यह सब इनकी ऊपरी हंसी और चटक मटक हम सबको दिखाने के लिये है दिल में इनको बड़ा सदमा है।

मंत्री—वह क्या ?

विदूषक—तनिक संतोष कीजिये इनको इस बातका अत्यंत खेद है कि बेचारी रुपये के लिये या जीवन को आनंदपूर्वक बिताने का सरल उपाय न जानने के कारण समय कुसमय इच्छा बेइच्छा इधर उधर नाचती फिरती है और सब कुछ करती फिरती है इतने पर भी शान्ति दायक प्रेम के रखने का प्याला इनका अब तक खाली है स्वप्न देखा था कि आनंद का मार्ग इधर ही है आनंद दायक प्रेम से दिल का प्याला लबालब भर जायगा परन्तु देखती क्या है कि अभी तक उसमें एक बूंद तक नहीं।

यह सब तो दूर बेचारीको उस प्रेम तक के दर्शन नहीं हुये जो साधारण श्रेणीके पवित्र आत्मा स्त्री पुरुषों

के बीच बात २ में बिखरता फिरता है। हाय ! बेचारी को कैसा धोखा हुआ सबने धोखा दिया और तब भी सब बेचारी को धोखेबाज समझते हैं जिधर देखती है धोखा ही धोखा दीखता है और 'क्या इलाज करें' इसके न जानने से भी बुद्धि मलीन हो गई है बस इसी का इनको अफ़सोस है।

मंत्री—अच्छा अब आप अपना व्याख्यान बंद करिये मैं मूर्खों के मुँह लगना नहीं चाहता।

विदूषक—मूर्ख हमेशा दूसरों को मूर्ख बतलाता है यह कोई नई बात नहीं है।

(यह बातें हो ही रही थीं कि इतने में एक वृद्ध पुरुष का सभा में प्रवेश हुआ जिनका सर घुटा हुआ है शरीर पर गेरुआ वस्त्र धारण किये हुये हैं कमल के समान सुन्दर किन्तु लाल २ नेत्र उनका क्रोध प्रगट कर रहे हैं उसे देख कर सभा दंग हो गई और उनके तेज से राजा व्याकुल होकर सभा सहित खड़ा हो गया और उसने साधु को उचित आसन पर बिठाया प्रेमलता अपने प्रेमालाप को आगे न बढ़ा सकी मंत्रीजी की भी बाईं आंख फड़कने लगी।)

विदूषक—(वैश्या के निकट जा धीरे से आंख मिचकाते हुये) लो अब भुगतो बेटी बाबा आ पहुँचे।

राजा—आज सभा विसर्जन होती है रानी और मंत्री के अतिरिक्त यहां कोई सभासद न रहे।

(सभासद साधु और राजा को सिर नवाकर जाते हैं)

राजा—(हाथ जोड़ कर) महाराज का शुभागमन कैसे हुआ ?

साधु—(बनावटी क्रोध भरी टेढ़ी निगाह से राजा की ओर देख कर) राजन् तू बड़ा पापी है नीच और रागी है तेरे यहाँ सज्जनों और सुविचारों का तो नाम तक नहीं मैं तेरे द्वार तक आया तो तेरे डयोड़ीवान् ने मुझे दुतकारा यह तेरी ही आज्ञा है ना ?

राजा—(हाथ जोड़ कर) महाराज क्षमा कीजिये, भूल हुई मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

साधु—(बनावटी क्रोध भरे स्वर से) हाँ भूल हुई, मैं नमस्कार करता हूँ, तू किसको नमस्कार करता है ?

राजा—(हाथ जोड़ कर) आपको।

साधु—मैं कौन हूँ ?

राजा—आप महात्मा है।

साधु—महात्मा कौन है, कहाँ है ?

रा०—आप मेरे सामने बैठे हुये हैं।

साधु—(अपने नीचे के आसन पर हाथ लगा कर) तेरे सामने यह मृग चर्म है क्या यही महात्मा है ?

रा०—नहीं महाराज यह तो मृग चर्म है महात्मा तो आप हैं।

सा०—तो क्या मृग चर्म पर बैठा नर चर्म महात्मा है।

रा०—(कुछ झिझक कर) महाराज आप ही जानें, मैं नहीं जानता।

सा०—यदि तूने जिसको प्रणाम किया है उसको नहीं दिखला सकता तो जिसने महात्मा को प्रणाम किया है उसको दिखला; हड्डी, मांस, मैद, रक्त, मज्जा, स्नायु आदि का पुतला है क्या वही तू है?

रा०—हां महाराज।

सा०—अरे मूर्ख तू अपने को हड्डी मांस बतलाता है, क्या तेरे सामने हड्डी, मांस, मूत्र रख दिया जावै तो तू घृणा नहीं करेगा?

रा०—(कुछ सोच कर) महाराज मुझमें जीव है और वह जीव रहित है।

सा०—तो तू जीव है या हड्डी मांस?

रा०—(कुछ लज्जित होकर) नहीं महाराज, मैं हड्डी मांस नहीं वल्कि जीव हूँ।

सा०—तो तू अपने को शरीर तो स्वीकार करता नहीं, फिर यदि तेरे शरीर को कष्ट हो तो तुझे क्या?

रा०—महाराज सो क्यों? मैं शरीर न सही परन्तु शरीर मेरा है मेरा उससे सम्बंध है इसलिये शरीर का सुख दुःख मुझे अवश्य होगा।

सा०—जीव का शरीर से कैसा संबंध है ? जीव देखने में नहीं आता शरीर दीखता है।

रा०—जब शरीर में जीव नहीं रहता तो वह मृतक हो जाता है इसलिये जीव और शरीर का सम्बन्ध सिद्ध हुआ।

सा०—जीव कहां चला जाता है ?

रा०—मुझे मालूम नहीं जीव को जाते आज तक किसी ने नहीं देखा।

सा०—अच्छा तो जीवके जाने की क्या पहिचान है ?

रा०—शरीर ज्यों का त्यों बना रहता है सिर्फ उसमें हरकत बन्द होजाती है यहाँ तक कि सांस का आना जाना भी बन्द हो जाता है।

सा०—तब क्या श्वासोश्वास ही जीव है ।

रा०—(घबराकर) मैं नहीं जानता आप ही समझाइये।

सा०—श्वासोश्वास पूर्ण समाधि में भी बन्द हो जाती है परन्तु शरीर नहीं मरता इससे श्वास जीव नहीं। या यों कहो कि प्राण जीव नहीं इसलिये तू शरीर नहीं तेरा नहीं इससे वास्तविक सम्बन्ध भी नहीं।

रा०—तो फिर मुझे शरीर का सुख दुःख क्यों मालूम पड़ता है।

सा०—यह सब सम्बन्ध मानना ही तो भूल है और दुःख का कारण भी यही सम्बन्ध है। स्त्री का संबंध होने पर ही स्त्री के सुख दुःख अपने को व्यापते हैं विवाह होने

के पहिले नहीं व्यापते हैं चाहे वह एक दूसरे को दुःखी देखते भी क्यों न हों।

रा०—तो क्या महाराज अगर मैं शरीर से सम्बन्ध न मानूं तो मुझे क्या उसका सुख दुःख का भान नहीं होगा?

सा०—कदापि नहीं, जब डाक्टर लोग किसी का अङ्ग काटते हैं तो उसको (Chrlooform) क्लोरोफोर्म सुंघा देते हैं जिससे शरीर से सम्बंध मानने वाली बुद्धि थोड़ी देर को दब जाती है तब मनुष्य को सुख दुःख का भान नहीं होता, समाधि में भी ऐसा ही होता है। अगर शरीर का और जीव का वास्तविक सम्बन्ध होता तो उस समय भी जीव है उसे दुःख होता इससे ज्ञात हुआ कि जीव और शरीर का सम्बंध माना हुआ है कल्पित है ज्ञानी का निश्चय जितना दृढ़ होता जाता है उतना ही यह संबंध भी ढीला होता जाता है, फिर शरीर का सुख दुःख ज्ञानी के शांति और परमानन्द को तिल भर भी टस से मस नहीं कर सकता। विदेह मुक्त महात्माओं को शरीर का किंचित् भी दुःख नहीं होता।

रा०—(साधु के चरणों पर गिर कर और फिर हाथ जोड़ कर) महाराज आपकी कृपा से अब समझ में आया कि मैं शरीर नहीं, शरीर मेरा नहीं और मेरा उससे कोई भी सम्बन्ध वास्तव में नहीं है।

सा०—(गंभीर भाव से) राजन् तू अभी भारी भूल में पड़ा हुआ है। मंत्री के तू बिल्कुल बस में हो गया है, राजा होकर भी तू काम क़ैदियों के से कर रहा है ऐसा तुझे शोभा नहीं देता। राजन् सुनः—

हरिगीत छन्द।

सुंदर वदन तनु कांतिमय सब अंग दृढ़ आयुष् युवा।
अनुकूल जन कुल श्रेष्ठतम जगमान्य सबसे ही सिवा॥
चारों दिशा में गीत गाये जांय तेरे नाम के।
रे हाय मरने बाद तेरे ये सभी किस काम के॥ १॥

ज्यों राजगृह गृह सज रहा सामिग्री अपरम्पार है।
जागीर वीसों ग्राम की धन अन्नमय भंडार है॥
मौजूद हैं जो चाहिये व्यपार सब आराम के।
रे हाय मरने बाद तेरे ये सभी किस काम के॥ २॥

आदर सभी तेरा करें, कोई वचन नहिं टालते।
नौकर गुमाश्ते दास दासी, सब हुकुम पर चालते॥
सुंदर बग़ीचा वृक्ष बहु, अमरूद जामुन आमके।
रे हाय मरने बाद तेरे ये सभी किस काम के॥ ३॥

गज गामिनी शुचि भामिनी रंभा सदृश प्रिय भाषिणी।
चंदर मुखी मृग नयन शोभा खानि चित्ताकर्षिणी॥
मीठे वचन मन भावने सुत पुत्रियां छवि धाम के।
रे हाय मरने बाद तेरे ये सभी किस काम के॥ ४॥

ऐश्वर्य सब ही प्राप्त हैं नहिं शांति तो भी आवती ।
नहिं शोक मिटता है कभी चिंताग्नि चित्त जलावती ॥
कौशल्य सब शाकल्य कर होजा शरण घनश्याम के ।
रे हाय मरने बाद तेरे ये सभी किस काम के ॥ ५ ॥

राजन् मेरी आज की बात याद रखना नहीं तो तेरा कल्याण नहीं, कल मेरा चेला तेरे पास भिक्षा मांगने आया था उसने तेरी शोचनीय दशा का वर्णन किया था, इसीसे मेरा तुझ तक आना हुआ अच्छा मैं अब जाता हूं।

रा०—(पैर पकड़ कर) नाथ ! मैं आपकी शरण हूँ मेरा माथा ठनकता है, भगवन् मुझे अब बीच में छोड़ कर कहां जाते हो।

सा०—(कृपा दृष्टि से) अच्छा मैं फिर आऊँगा तू मेरे कहे पर विचार करना। तू राजा है संसारी दुष्ट मनुष्यों का अनुकरण राजा होकर न कर नहीं तो तेरी प्रजा भ्रष्ट हो जावेगी और इस असावधानी के कारण तुझे उनके पाप का भी भागी होना पड़ेगा। राज्य करना कोई सहज कार्य नहीं, क्या तू यह समझता है कि राज्य का मज़ा भोगने को तू है और सज़ा भोगने को कोई और ? ईश्वर अन्यायी नहीं है, ईश्वर ने अगर तुझे राज्य सोंपा है तो इस विश्वास से कि तू उसके सदुपयोग के क़ाबिल है यदि तू ऐसा नहीं करता तो तुझे ईश्वर अपने नियमा-

नुसार इसी जन्म में वा दूसरे जन्म में अवश्य ही अयोग्य समझ कर अनादर सहित इस पद से गिरा देगा।

राजा, "जो विषयां संतन तजी मूढ़ ताहि लिपटात।
ज्यों नर डारै वमन कर स्वान स्वाद सों खात॥"

तू स्वान न बन—राजा रह। अच्छा मैं अब जाता हूँ फिर आऊँगा।

रा०—जो इच्छा महाराज की (साधु जाते हैं और राजा चरण छूता है)

(राजा माथे पर हाथ रक्खे कुछ देर यौंही बैठा रहता है फिर ऊपर को धीरे २ सर उठा कर भारी सांस लेता हुआ यों कहने लगा)

रा०—ओफ़! मैं क्या समझे हुये था और क्या निकला। (उठता हुआ) ईश्वर कृपा कर, गुरुदेव तुम्हारी शरण हूँ।

(कुछ देर तक टहलना और फिर गाना)

गाना।

झूठा है संसार सभी मतलब के॥
ज़ाहिर में ग़म ख्वार जगत है वातिनमें खूं ख्वार। सभी०
बाहर अमृत भीतर विष है बिगड़ीके नहीं यार। सभी०
राधेश्याम अन्त जब सोचत कैसे होवे पार। सभी०
झूठा है संसार सभी मतलब के॥

(राजा का यह कहते हुये सभा मंदिर से चला जाना)

दृश्य तीसरा ।

स्थान–शयनगृह, समय रात्री ।

(चांदनी रात्रि है चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ है कामी चोर और चिन्ता गृसित लोगों के अतिरिक्त सभी को निद्रा देवी की गोद् में जाने की पड़ी है । आज राजाकी भी विचित्र दशा है; वाग को जाना, नीमजां का आना और गाना गाना, चेले साधु के प्रति व्यवहार ! राज सभा में प्रेमलता का प्रेमालाप और उसके पश्चात् गुरु साधु का आना—सभी एक २ करके उसकी आंखों के सामने आने लगे आखिर को राजा यों वड़वड़ाने लगा)

राजा—ओफ ! मैंने कितने पाप कर डाले हैं, धिक्कार है मेरे इस जीवन पर—भगवान् क्या मुझ से पापी भी तेरे दरवार में क्षमा किये जा सकते हैं खैर कुछ भी हो अब तो मैं तेरे ही शरण हूँ (यह कह कर उठ वैठता है और रानी को पुकारता है ।)

रानी—हां महाराज । (आती है)

राजा—प्रिये, वैठ जाओ और मुझे क्षमा करो ।

रानी—नाथ मुझे शरमिन्दा न करो ।

राजा—रानी देखा, आज साधु गुरु क्या २ कहते थे ओफ ! मैंने तुम्हारा कहना न मान कर दुष्ट मंत्री की मीठी २ वातों में आ आकर सर्वस्व नाश कर डाला ।

रानी—(हाथ जोड़ कर) प्राणनाथ, मेरे जीवन आधार ! मैं आपके प्रकाश से ही प्रकाशित हूँ—पतिव्रता का धर्म है कि जैसा उसका पति कहे वैसा ही करे--चाहे मुझे संसारिक भाव वाली बना लीजिये चाहे आत्म भाव वाली बना लीजिये मैं आपके इशारे पर चलने वाली हूं मैं आपको पहिले यथार्थ बतला देती थी परन्तु मंत्री ने आपको बहका दिया, मुझे भी फिर आपके अनुकूल बनना पड़ा जिससे मेरी विवेक शक्ति भी मंद हो गई ।

राजा—खैर ! रानी अब वही करो जो कि ठीक हो, दुष्ट मंत्री की अब न चलने दो ।

रानी—जैसी आज्ञा महाराज की ।

(यह बातें हो ही रही थीं कि मंत्री महाशय आते हुये दीख पड़े आपके हाथ में एक लिफाफा है । विदूषक भी दबे पैर उनके पीछे २ लगा हुआ आ रहा है)

रा०—कहिये मंत्रीजी क्या समाचार हैं ?

मं०—आपकी कृपा से सब आनन्द है ।

रा०—यह क्या तूफान लिये फिरते हो ।

मं०—महाराज इस पर हस्ताक्षर होने की जरूरत है ।

रा०—देखूं क्या बात है (राजा पढ़ता है)

"स्त्री ही सचमुच प्रेम की झलकती हुई मूर्ति है, संसार में 'देखने' योग्य पदार्थों में सब से उत्तम मृगनयनी पिकवयनी स्त्रियों का परम अनुराग सहित पूर्ण चन्द्रवत् प्रसन्न वदन। 'सूंघने' को महा सुगंधित मुखारविन्द की सुगन्धि। 'सुनने' के लिये कोकिल कंठवत् मधुर वाणी। 'स्वाद' लेने को उनके अधरामृत स्वरस। स्पर्श के लिये कोमलांगिनियों की कोमल तनु और 'ध्यान' के लिये उनका नव यौवन और काम कुतूहल है ऐसी सर्व सिद्धिदायक मनोरमा कृपोदरियों को छोड़ कर जो लोग योग करते हैं उनका संसार में जन्म लेना वृथा है।"

रा०—(गंभीर भाव से) मन्त्री तू सदैव एक ओर ही सोचा करता है पहिले तो तेरे ऊपर की कही हुई इच्छाओं के अनुसार प्रेम की मूर्ति, पूरण चन्द्रवत् प्रसन्न वदन, गज गामिनी आदि स्त्रियां होती ही नहीं, ऐसे ख्याल वही बांध सकता है जिसको कि मद रूपी मदिरा का प्राण घातक नशा चढ़ा हो ये सब भंग की तरंग में रंग बिरंगे ख्याली पुलाव के मानिन्द हैं। जैसे कि शराबी शराब पी लेने के बाद की दशा को, वेहूदा बकने को और गंदी नालियों में गिर कर उनकी दुर्गंधि को भला मानता है। उसका कहना है कि "शराव आव नहीं आवे जिंदगानी है" (आव=पानी कि जिसके सामने आवे ह्यात पानी है) जिस तरह अफ़ीमची, चरसी और चंडूबाज अपने २

इष्ट देवियों के गुनगाने में मग्न रहते हैं. उसी तरह जिस किसी ने अपनी प्रेमिकाओं की इस तरह ऊल जलूल झूँठ मूठ तारीफ़ मारने को क़लम उठाई है; या मुंह खोला है, उसने निःसंदेह मद रूपी मदिरा की तर बे तर कई प्यालियां चढ़ा कर उत्तम दशा में ही ऐसा किया है। सामान्य मनुष्य भी जिसके कि होश हवास दुरुस्त हैं कदापि इन अनर्थकारी चीजों को ग्रहण न करेगा और न उनके नशे में पागल बन जाने को अपना सौभाग्य समझेगा।

आज कल स्त्रियों की तारीफ़ में क्या खूब! वाह वाह!! कहने का मज़ा लोगों को पड़ गया है, उसका कारण तेरी शागिर्दी में रहना है "नाक कटा कर भगवान् पाने का मंत्र जपना है।"

मंत्री, तू आज ही नया बहकाने नहीं चला तेरी ही बदौलत मजनूं बेक़रार है फ़रहाद का हाल तबाह है। तूने ही रावण को बरबाद किया और बालि का नाश किया पृथ्वीराज नहीं २ हिंदू जातिका मान मिट्टी में मिलाने वाला सिर्फ़ तू ही है, तेरी ही इस विषयासक्ति के कारण इस थोड़ी सी देर के तुच्छ आनन्द के कारण धन, दौलत, स्वास्थ्य और प्रतिष्ठा सब को तिलांजलि देनी पड़ती है जब कि विषयासक्ति का ऐसा भयानक अन्त है; तब

आन्तर मुख ब्रह्मचारियों के लिये योग, ऋद्धिसिद्धि और ईश्वर तक पहुंचने का रास्ता हाथ जोड़े बाट देखता है, राजे महाराजे उनके चरण रज के लिये तरसते हैं फिर कौन अंधा हीरा छोड़ कर कांच को लेगा और ऐसी सीख देने वाले और मानने वाले दोनों ही यदि मूर्ख नहीं तो कौन है ?

मं०—जरा ठहिरये आपके कहनेसे तो यह सिद्ध हुआ कि स्त्रियों की सुंदरता कोई चीज़ ही नहीं, उनमें कोई आकर्षण शक्ति ही नहीं ?

रा०—स्त्रियों की क्या संसार में प्रत्येक वस्तु की सुंदरता का एक मात्र नियम है।

"जहां जिस वस्तु द्वारा जिस जीव की इच्छा पूर्ति होती है या होना सम्भव होता है वहीं वह वस्तु उसको प्यारी अथवा (सुंदर) मालूम होने लगती है यदि वह वस्तु कष्ट सहकर यानी मुश्किल से मिली हो तो वह और अधिक प्यारी लगने लगती है" जैसे जब किसी को कोई नया शौक़ लगता है तो उसको उस शौक़ की चीज़ के सामने संसार में कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगती, परन्तु उस भूत के उतरते ही वह चीज़ भी उसकी निगाह से उतर जाती है, यद्यपि वह वस्तु जैसे पहिले थी वैसी ही अब भी है।

लैला दूसरों को खूबसूरत न थी परन्तु मजनूं की सर्वस्व थी उसके लिये लैला से बढ़कर सुंदर कोई न था।

बहुत से मनुष्यों को एक ही चीज़ खूबसूरत मालूम पड़ती है उसका कारण भी उन सब की मिलती जुलती वासनायें हैं। बंदर को बंदर का बच्चा ही अच्छा लगता है मनुष्य का नहीं।

इसके अतिरिक्त बहुत से जीवों को जो एक ही वस्तु सुंदर मालूम पड़ती है उसका कारण भी उन सब जीवों की किसी न किसी अंश में मिलती जुलती वासनायें हैं। यानी कुछ वासनायें ऐसी हैं जो मनुष्य मात्र में होती हैं जिसके कारण सभी मनुष्यों को एक ही वस्तु भली मालूम पड़ती है, इसी तरह कुछ वासनायें ऐसी हैं जो मनुष्य की वासनाओं से उलटी प्रत्येक बंदर में पाई जाती हैं जिससे मनुष्य की पसंद की हुई चीज़ उसको पसंद नहीं आती है। सब मनुष्यों की सुंदरता का आदर्श भी एक नहीं है चीनी, हबशी, भारतवासी, यूरुपी, अमेरिकन आदि सभी का आदर्श जुदा २ है और देश काल अनुसार वह भी बदलता रहता है इसलिये सुंदरता भी मन की मानी हुई है कोई खास चीज़ नहीं।

मं०—अच्छा बताओ गोरा, मुलाइम, भरा हुआ चहरा क्यों अच्छा लगता है?

राजा—धूप और हवा में काम करने से चहरा काला खुरखुरा पड़ जाता है और तन्दुरस्ती के नियम पालन करने से ही चहरा भरा रह सकता है, क्योंकि गोरा-मुलाइम चहरा रखने के लिये धन, समय और बुद्धि खर्च करनी पड़ती है इसलिये वह भला भी मालूम पड़ता है, यदि काला खुरखुरा और पिंचका चहरा रखने में धन समय और बुद्धि ज्यादह खर्च करनी पड़े तो वह भी भला मालूम होने लगेगा।

पहिले खद्दर बुरा मालूम होता था अब खद्दर भला मालूम होता है। रोज फैशनें इसी उसूल पर बदला करती हैं Competition यानी मुकाबले का मसाला इसी उसूल पर तैयार किया जाता है।

नुमाज पढ़ते वक्त सिजदा करने से जो काला दाग नुमाजियों के माथे पर पड़ जाता है मुसलमान भाइयों को भला मालूम होता है, हिन्दू भाइयों को बुरा मालूम होता है। शंख झालर की आवाज़ मुसलमानों को बुरी है, हिन्दुओं को अति प्रिय है, इन सबकी और क्या वजह हो सकती है?

नतीजा:—

"बस जो एक योनि के जीवों को सुन्दर (प्रिय) है वह दूसरे योनि के जीवों को कुरूप दुःखदाई हो सकता है; और एक योनि के जीवों में भी 'देश काल' और 'मानव विचारों' में

परिवर्तन के साथ २ कष्ट और कठिनता से प्राप्त होने, अथवा 'सुलभता और बहुतायत से' मिलने अनुसार, एक वस्तु की सुन्दरता व आकर्षण शक्ति पर मत भेद रहा है, और रहता चलेगा" इसलिये सुन्दरता और आकर्षण शक्ति की जड़ इच्छा में है अपने में है बाहर नहीं है। जो रूप के लिये कहा गया है वही शब्द-स्पर्श-रस-गंध के लिये कहा जा सकता है।

संसार में जितनी भी तरह २ की वस्तुयें हैं वह सब जीवों की इच्छाओं के पूर्ति के सामान और उनके अनुचित होने से उनसे बचने के सामान रूप हैं, इन सब इच्छाओं में परमानन्द प्राप्त की इच्छा ही परम सुन्दर इच्छा है और उसके पूर्ति का सामान और पुरुषार्थ ही परम श्रेष्ठ है।

Swami Vivekanand says in his lecture "Nature of man—Suppose there is a baby in a room with a bag of gold on the table & a thief comes & sleep the gold. Will the baby know, it was Sdden? That which we have inside see outside. Baby had no thief inside & Sees no thief outside." There is no thief in his world.

अर्थ:—स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं "मान लो कि एक कमरे में सोने से भरी थैली मेज़ पर रक्खी है और एक चोर आता है और उसे चुरा लेजाता है। क्या बच्चा इस चोरी को

समझेगा ? जो कि हमारे अन्दर है वही हम बाहर देखते हैं बच्चा को दुनियां में चोर नहीं है इस वजह से वह कोई चोर बाहर नहीं देखता ।

Swami Ram says "Oh man you yourself make objects attracture by your looks. Looking at it with those eyes, you yourself Shed your lustre upon the subject & then you fall in love with it."

अर्थ—स्वामी रामतीर्थ कहते हैं "ओ मनुष्यो तुम चीजों की तरफ देखकर उनको स्वयं खूबसूरत बना लेते हो-उनकी तरफ अपनी निगाह द्वारा तुम अपनी चमक (खूबसूरती) उन पर डालते हो और फिर स्वयं ही उन पर मोहित होजाते हो।"

विचार सागर चौपाई ३४, ३५, ३६ में कहा है-"हे शिष्य आत्मा से विमुख बुद्धि वाले को विषय की इच्छा होती है ऐसी बुद्धि चंचल रहे है ता चंचल बुद्धि में आत्म स्वरूप आनन्द आभास कहिये प्रतिबिंब नहीं होवे है, परन्तु जब जिस विषय की इच्छा होवे सो प्राप्त होजावे तब पुरुष की बुद्धि 'क्षण मात्र स्थित होय के अन्तर मुख बुद्धि की वृत्ति होवे है तभी उसमें आत्म स्वरूप आनंद (आभास) का प्रतिबिंब होवे है, तिस आत्म स्वरूप आनंद के प्रतिबिम्ब कूं अनुभव करके पुरुष कूं भ्रान्ति होवे है कि मेरे कूं विषय से आनन्द भया परन्तु विषय में आनन्द है नहीं। क्योंकि:—

१—जो कदाचित् विषय में आनन्द होवे तो एक विषय से तृप्त मनुष्य को जब दूसरी विषय की इच्छा होती है तब भी प्रथम विषय में आनन्द हुआ चाहिये। (सो होवे नहीं)

२—जो विषयमें ही आनन्द होवे तो जा पुरुष का मित्र अथवा और कोई अत्यन्त प्यारा जो अकस्मात् बहुतकाल पीछेमिल जावे तब उसके देखते ही प्रथम जो आनन्द होवे है सो आनंद फिर सदा नहीं होता, सो सदा ही होना चाहिये था क्योंकि आनन्दका हेतु जो पुरुष है वह उसके समीप है।

३—जो विषय में ही आनन्द होवे तो समाधि औ सुपुप्ति काल में जो आनन्द का भान होवे है सो न हुआ चाहिये काहे ते समाधि, सुपुप्ति में विषय का सम्बन्ध है नहीं।"

मंत्री—महाराज, मतलब तो आनंद से ही है, चाहे विषयों द्वारा मिले, चाहे समाधि द्वारा मिले; विषयों द्वारा हम आनन्द हर रोज मिलता देखते हैं, समाधि द्वारा गिने चुने महात्मा लोग ही मिलता बतलाते हैं।

राजा—बहुत ठीक है मंत्री जीव मात्र आनंद की ही खोज में है क्योंकि वह वास्तव में आनन्द स्वरूप है ही परन्तु विषयानन्द में और परमानन्द में बड़ा अन्तर है और वह अन्तर मलीन बुद्धि अच्छी तरह समझ नहीं सकती; तो भी मलीन बुद्धि को इतनी ऊँचाई पर ले जाया जा सकता है कि वहां से उसको पूरा विश्वास

होजाता है कि विषयानन्द में और परमानन्द में महान् अन्तर है और उस आनंद के मुकाबले में जो कष्ट और पुरुषार्थ जरूरी हैं वह कुछ बड़ी भारी बात नहीं हैं। मैं परमानंद और विषयानंद का एक बड़ा भारी अन्तर तेरे सामने रखता हूँ।

विषय चिरस्थायी नहीं है ऐसा जानने वाला विषय द्वारा प्राप्त आनन्द को भी चिरस्थायी नहीं समझ सकता और इस वजह से वह परम सुखी कभी अपने को नहीं समझ सकता; जिसको कि आनन्द के भंग होने का हर समय डर है वह भला कैसे सुखी रह सकता है ?

ब्रह्मानन्द के लिये किसी वस्तु की दरकार नहीं है। फिर उससे जुदाई का सवाल ही नहीं आता; यही कारण है कि विषयानन्द मग्न आंखे ब्रह्मानन्द मग्न आंखोंके सामने सदा से (झपती) नीची रही हैं, राजे महाराजे लँगोटी धारीसंतों के सदा चरण चूमते रहते हैं।

जैसे अंधेरे में बिजली, गैस की रोशनी और चांदनी अपनी २ चमक और रौनक दिखाती हैं परन्तु सूर्य के प्रकाश में सब फीकी पड़ जाती हैं वैसे ही ज्ञान के प्रकाश में विषयानंद ब्रह्मानन्द के सामने नाचीज़ और तुच्छ जान पड़ता है।

जैसे अंधेरे में बिजली इत्यादि की रोशनी भली मालूम पड़ती है उसी तरह मलीन हृदय को विषयानन्द ही भला मालूम होता है।

जैसे पुराने कैदी को जेलखाना ही घर के मानिन्द (भला मालूम होने लगता है) सुहा जाता है और उसको वहां की दाल रोटी आदि से प्रेम हो जाता है और घर जाने को जी नहीं चाहता; वैसे ही मन, इन्द्रियों और विषयों का साथ छोड़ते नहीं बनता।

विदूषक—(हंस कर) मंत्रीजी यह आपसे ही कहा जारहा है।

मं०—तो महाराज संसार में लोग ज्यादहतर विषयी क्यों हैं ?

रा०—जैसे जेलख़ाने में ज्यादहतर क़ैदी दुष्ट चरित्र के ही होते हैं। थोड़े से क़सूरमें सज़ा पाये हुये बहुत कम होते हैं उसी तरह इस संसार रूपी क़ैदख़ानेमें विरला ही यथार्थ बातका जाननेवाला होता है, निज स्वरूपके अतिरिक्त और कहीं से आनन्द आने के (शुबह) संदेह रूपी क़सूर की सज़ा में सबको संसार में आना पड़ा है। थोड़े से ऐसे हैं जिनको थोड़ीसी ठोकर लगते ही होश में आगये हैं (ज्ञान हो गया है) और अब वह अपनी मूर्खता पर हंसते रहते हैं और दूसरों को ठीक रास्ता बतलाते हैं परन्तु बहुत तादाद ऐसे सोने वालों की ही है कि जिनको जागना हश्र तक क़सम है यानी दिन रात दुःख सहते हैं तब भी उससे

बचने का यथार्थ प्रयत्न नहीं करते इन संसार के क़ैदियों को ही जीव नाम से पुकारा जाता है।

विदूषक—मंत्रीजी जानते हो कितनी रात होगई ? (गाता है)

सुधार मन मोरे बिगड़ी हुई को सुधार ।
खाने में सोने में खेलों में मेलों में ।
क्यों भूला फिरै है गंवार ॥ १ ॥
दमड़ी पै चमड़ी पै मरता है गिरता है ।
बनता है तू क्यों चमार ॥ २ ॥
तुलसी कटा कर बोवे बबूरी ।
समझे न सार रु असार ॥ ३ ॥
पावे तब ही शान्ती राधेश्याम तू ।
सूझे जब सच्चा विचार ॥ ४ ॥

मंत्री—(घबड़ा कर परन्तु फिर संभल कर) अच्छा महाराज इस काग़ज़ पर तो हस्ताक्षर करने में कोई दोष नहीं ?

रा०—(मन के हाथ से काग़ज़ ले पढ़ता है) "मानसिक क्रिया यानी सूक्ष्म क्रिया में क्या दोष है ? उसमें तो कोई कष्ट सहने का भी काम नहीं है मजे से पड़े मनमाने सुसज्जित कमरे में लेट रहे, मन माने ऐश के सामान मुहइआ कर लिये, मनमानी सुन्दरियां बुलालीं, मन माना सुख भोग किया, स्थूल में तो मनमानी सुन्दरी, सीनरी, ऋतु और

सब आराम के समान मिलना बड़े महाराज को भी प्राप्त आज तक न हुये न होंगे परन्तु मानसिक अर्थात् सूक्ष्म क्रिया में केवल संकल्प मात्र की ही देरी है; फिर क्या सब तैयार है। कैसी उम्दा तरकीब है सांप मरे पर लाठी न टूटे।"

(राजा मुसकराता है रानी की तरफ देखकर)

मंत्री—(खुश होकर) महाराज अब जल्दी दस्तखत कीजिये इसमें अब सोचने विचारने का काम नहीं।

रा०—(गंभीर भाव से) मंत्री! तू बड़ा ही दुष्ट है वाह! किस तरकीब से गढ़े में गिराने लाया है सच तो यह है कि तू बड़ा ही निमकहराम है, भला यह तो बता कि अगर सूक्ष्म न होगी तो स्थूल कहां से आजावेगी। सूक्ष्म ही तो पककर स्थूल बनती है। अब सूक्ष्म की कह रहा है जहां सूक्ष्म की इजाजत मिली नतीजा स्थूल ही है उंगली पकड़ कर पहुंचा पकड़ना तेरा स्वभाव है।

मंत्री—(सोचता है कि राजा और रानी एक स्वर से बोलते हैं अब दाल यहां नहीं गलेगी, उदास होता है मगर फिर सँभल कर कहने लगा) तो महाराज अपनी स्त्री की तो इजाजत है उस द्वारा तो मैं आनन्द भोग सकता हूँ ?

राजा—तेरी नीयत अब भी वद है और तेरी दृष्टि कर्तव्य से हटकर विषयमें आसक्त है इससे मैं उसकी भी इजाजत नहीं दे सकता क्योंकि विषयी एक क्या एक हजारसे भी संतुष्ट नहीं रह सकता। विषयी की तृप्ति न कहीं देखी गई है और न कहीं सुनी गई है वास्तविक आनंद के लिये किसी भी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। अफ़सोस! अगर-तुझे निज स्वरूपानन्द की हवा भी लग गई होती तो तू ऐसी मूर्खता की वातें कदापि नहीं करता वह तो इन्द्रियों का विषय है फिर तू क्यों व्यर्थ सम्बन्ध मानकर सुख दुःख के चढ़ाव उतार में पड़ता है?

मंत्री—मालूम होता है कि श्रीमतीजी ने आप पर खूब मंत्र फेरा है।

विदूषक—भला सीधी उंगलियोंसे आज तक कभी घी निकला है।

रानी—(क्रोध से) मंत्री ज़रा होश में आजा अब मेरी वारी है तू बहुत सर चढ़ गया है मेरी अब यह तुझको आखिरी नसीहत है।

हरिगीति छन्द।

१

हे मूढ़ मन तव मूर्खता का अंत ही नहीं आवता।
भटके पदार्थों में सदा? नहिं लाभ कुछ भी पावता॥
लेना नहीं देना नहीं क्यों व्यर्थ दुःख उठावता।
क्यों मूर्ख गुड़ खाना चहे? क्यों नाक कान छिदावता॥

२

करके हज़ारों कामना हर कार्य में घुस जाय है।
स्वाधीन करने और को तू आप ही फँस जाय है॥
दुःख पाय है सकुचाय है चिल्लाय है पछिताय है।
करता प्रतिज्ञा आज कल ही भूल उसको जाय है॥

३

सो जाय पूजा पाठ में सुख का सदन न सुहाय है।
हित बात जा इस कान में उस कान से उड़ जाय है॥
दिन रात गप शप मे गँवा आनन्द जी में मानता।
लज्जित हुआ बहु बार अब निर्लज्ज तज निर्लज्जता॥

४

हे दुष्ट! तेरा संग मेरे काम कुछ आया नहीं।
आती रहीं आपत्तियां सब सम्पदा जाती रहीं॥
दिनमें सभी के सामने अरु रात को एकान्त में।
उलटी पढ़ावे पट्टियां जिससे नरक हो अन्त में॥

५

हे चपल अब तेरी सभी चालाकियां हम जानते।
अब वश न तेरा चल सकै हम तुच्छ तुझको मानते॥
ऐसी कवच विज्ञान की सद्गुरु कृपा पहनों सही।
नहीं चोट तेरी लग सकै तू टूट जावे आप ही॥

बस तू अब अपना मुंह न दिखा, मैं अब तेरी बातों में नहीं आने की।

(रानी मुंह फेर लेती है)

मंत्री—(घबड़ाकर) हं ! हं ! देवी मैं तो आपका दास हूँ। (पैर पकड़ता है) मैं आपके सहारे ही जीता हूँ मैं आपके सामने एक तुच्छ बालक हूं मैं उचित अनुचित क्या जानूं जो देखता हूँ वही मांगने लगता हूं मुझे क्षमा करो आज से मैं आपका कहना मानने की कोशिश करूंगा, यदि कोई भूल होजावे तो कृपाकर क्षमा करना क्योंकि आदत संभलते संभलते ही संभलेगी। "क्षमा बड़िन को होत है छोटिन को उत्पात"

रानी—(तिरछी निगाह से) फिर वही शरारत अब भी माफ़ी की उम्मेद ? जा ज्यादह बात न कर " राम—नाम पढ़ना हो तो पढ़ नहीं तो पिंजड़ा खाली कर।"

(फिर मुंह फेर लेती है)

मंत्री—(हाथ जोड़ कर) नहीं २ महारानी जी मैं वही करूंगा जो आप कहेंगी, इस बार मुझे क्षमा प्रदान कीजिये।

(मंत्री रानी के पैर पकड़ता है)

रानी—तो देख मैंने आज से प्रतिज्ञा की है कि मैं वही कार्य करूंगी जिससे महाराज का कल्याण हो; तुझे मेरा साथ देना होगा। कल एक तेजस्वी पुरुष तेरे ही सामने आया था वह हमको बहुत समझाता रहा, मेरी समझ में तो बहुत कुछ आया परन्तु तुझ पर तो "वही रफ्तार बेढंगी जो पहिले थी सो अब भी है" वाली मसल चरितार्थ होती है।

मंत्री—(हाथ जोड़कर) बस महारानी जी मैं कैसे कहूं, आप से विमुख हो मैं कहां रह सकता हूँ? विमुख रहने का साहस तभी तक था जब तक कि आपकी यथार्थ में कड़ी निगाह मुझपर नहीं पड़ी थी।

विदूषक—(ऊपर को मुंह उठा कर) हे भगवान् आज तुमने मेरा कलेजा ठंडा किया आज घर जाकर १।) रु० का प्रसाद जरूर बांटूंगा।

रानी—तो देखो मंत्री अब तुमः—

[१] गपशप में न लगना।

[२] प्रत्येक कार्य समय पर हो इसका ध्यान रखना।

[३] व्यर्थ की कामना न किया करो, चंचलता अवश्य छोड़ दो।

[४] दूसरों के गुण और अपने दोष देखा करो।

[५] अपनी भूल स्वीकार करने में हिचका न करो।

[६] आलसी बन खाट में पड़े २ सोचते रहने की सिफारिश न किया करो।

[७] काम क्रोध मद लोभ मोह इन पांचों से बचे रहो।

मंत्री—(फुरती के साथ) बहुत अच्छा।

रानी—(गाती है)

प्यारे मन रण में चौकस जाना।
नाम विवेक१ हमारा कहिये पायक परम प्रधाना ।
सत्य लोक है लोक हमारा अविनाशी२ सुलताना ॥१॥
तीन लोक माया ने जीते तृष्णा३ अति बलवाना ।
साधु संत अवधूत हु लूटे बांच लेउ परवाना ॥२॥
राग द्वेश सेनापति ऐसे मारे संन्मुख बाना ।
अभिनिवेष४ अस्मिता५ मंत्री कठिन बड़ा मैदाना ॥३॥
क्षमा आर्जव६ दया तोश७ सत पांचों शस्त्र लगाना ।
ज्ञान विमान बैठ धीरज सों निश्चय जोर जमाना ॥४॥
निर्भय जीत होइ फिर तेरी नेकहु मत घबड़ाना ।
सोहं८ तुझ से कहे देत हों पइहो पद निर्वाना ॥५॥

१ नित्यानित्य का विचार २ नाश रहित ३ अधिक प्राप्ति की इच्छा ४ मृत्यु का भय ५ अहंकार ६ नम्रता ७ संतोष ८ वह मैं हूं।

मंत्री—महारानी आपके सदुपदेश से मुझमें विचित्र शक्ति आ रही है, मैं जिन्हें आजतक दोस्त समझे हुए था वह अब वास्तव में कपटी लुटेरे दीख पड़ते हैं, मैं अब कदापि ऐसा धोका नहीं खाऊंगा।

रानी—(प्रेम दृष्टि से) बस यही चाहिये मंत्री अब तुम जावो।

(मंत्री का शिर नवाकर जाना)

विदूषक—मंत्री जी आज से हम और आप दोस्त हैं (मंत्री का हाथ पकड़ कर साथ २ जाता है)

राजा—(प्रेम दृष्टि से रानी की ओर देख कर) प्यारी तुम अब मेरे कल्याण में अवश्य सहायता दे सकोगी ऐसा मेरा विश्वास है।

रानी—(नीचे को निगाह कर) सब आपकी ही कृपा का फल है महाराज!

(इतनेमें रात्रिके २ बजते हैं और रानी राजाकी आज्ञानुसार अपने कमरे में वापिस जाती है और राजाने भी निद्रा देवी की गोद की शरण ली।)

दृश्य चौथा।

स्थान—मन मोदक बाग़ समय प्रातःकाल।

(प्रातःकाल की शीतल मन्द वायु पुष्पों की सुवास लिये हुये चित्त को अत्यन्त प्रसन्न कर रही है, राजा और रानी मंत्रीके साथ फव्वारे के चारों तरफ़ पड़ी हुई कुर्सियों पर विराजमान हैं और एक बड़े भारी प्रश्न की उधेड़ बुन में चुपचाप बैठे हुये हैं फिर आराम कुर्सीपर पड़े हुये राजा यों बड़बड़ाने लगे:—)

राजा—

छन्द।

धन धान्य पुत्र सुपात्र हों नारी सुशीला सुंदरी।
शारद विशारद नीतिवित् बुद्धि सकल गुण मंदिरी॥
शुभ कार्य करिये आयु भर विद्वान् साधु जिमाइये।
जब तक न आतम बोध हो नहिं शांति अविचल पाइये॥
सब विधि प्रतिष्टा से रहित निर्धन दरिद्र अपंग हो।
दुर्गन्ध युत हो कष्ट से भोजन रहित नग्नांग हो॥
हो बोध जिसको आत्म का कौशल्य सोहि सराहिये।
जब तक न आतम बोध हो नहिं शांति अविचल पाइये॥

(बैठ कर थोड़ी देर में फिर बड़बड़ाता है)

ब्रह्मते पुरुष और प्रकृति प्रगट भई,
प्रकृति तें महत्तत्त्व पुनि अहंकार है।
अहंकारहू ते तीन गुण सत रज तम,
तमहू ते महाभूत विषय पसार है ॥
रजहू ते इन्द्रि दश पृथक पृथक भई,
सतहू ते मन आदि देवता विचार है।
ऐसे अनुक्रमकरि शिष्यसूं कहत गुरु,
सुंदर सकल यह मिथ्या भ्रम जाल है॥

(राजा का फिर सोच में पड़ जाना और कुछ आहट पाकर पीछे की तरफ़ देखना और गुरुजी को आते देख खड़ा हो जाना और चरण छूना)

राजा—महाराज मैं आपकी ही बाट देख रहा था।

गुरु—अच्छा कहो क्या हाल है?

राजा—बस! आपकी कृपा है और उसी की आवश्यकता है।

गुरु—तुझे अपनी भूल अब जान पड़ी व नहीं, ठीक २ कह?

राजा—महाराज भूल की याद आते ही हृदय कांप उठता है परन्तु आपकी कृपा देख कुछ तसल्ली होती है।

गुरु—धीरज रख तेरा कल्याण होगा, अच्छा अपना हाल कह।

राजा—महाराज आपकी कृपा से मेरे (मन) मंत्री और (बुद्धि) रानी ठीक २ काम करने लगे हैं आगे को आपका ही भरोसा है।

गुरु—अब तेरी दशा मुमुक्षुओं की सी होने वाली है मैं आज तुझको मुमुक्षुओं के लक्षण सुनाता हूँ।

छप्पय छन्द।

सहे न वृथा विलम्ब मोक्ष साधन अनुरागे।
जो साधन विपरीत प्रीत उन सबकी त्यागे॥
जो २ दीखें भूल मूल से ताइ नशावे।
परिपूर्ण उत्साह साथ साधन मन लावे॥
सुत वित नारि कुटुम्बका सङ्ग जिसे नहिं भावता।
जाने जलता अग्नि जग सो मुमुक्षु कहलावता॥
वश हो मन वच देह नेह आतम में जागे।
जग से हो उदास आस सब ही की त्यागे॥१॥
सिद्धिन की नहिं चाह राह उनकी नहिं जाता।
ब्रह्मादिक ऐश्वर्य तुच्छ नहिं चित्त लुभाता॥
दिव्य राज्य त्रय लोक का विष्ठा सम न सुहावता।
जाने जलता अग्नि जग सो मुमुक्षु कहलावता॥२॥
साधक निर्मल वृत्ति नित्य निज चित्त निहारे।
विषय वासना भोग रोग सम जानि निवारे॥

होवें लाखों विघ्न यत्न करता ही रहवे ।
त्यागे इष्ट अनिष्ट कष्ट आवे सो सहवे ॥
निज को दे धिक्कार जब विषयन में चित जावता ।
जाने जलता अग्नि जग सो मुमुक्षु कहलावता ॥३॥
अज्ञानी कृत कर्म शास्त्र वर्णित फल देता ।
मोक्ष हेतु वही कर्म चित्त निर्मल कर देता ॥
श्रवण करे दे कान ज्ञान मिथ्या सब छूटे ।
मनन करे दे चित्त जगत का दृढ़ गढ़ टूटे ॥
करें अखंडित ध्यान नर शीघ्र परमपद पावता ।
जाने जलता अग्नि जग सो मुमुक्षु कहलावता ॥४॥

(मुसकाते हुये) कुछ समझ में आता है ?

रा०—महाराज खूब समझ में आता है मुझे आपके चरणों में प्रीति है और वचनों में पूरण श्रद्धा है ।

गुरु—मुमुक्षु किसी कामके बनने बिगड़नेमें सुखी दुःखी नहीं होता क्योंकि वह फल की परवा नहीं करता 'कर्तव्य करने में ही खुशी मनाता है' यदि कहीं कर्तव्य में चूक हो गई तो दुखी होता है और अपने को धिक्कारता है चाहे उस चूक का फल पर बुरा असर पड़ा हो या न पड़ा हो । मैं अब जाता हूँ तू मेरे कहे अनुसार जो कुछ अपने में कमी पावे उसे दूर कर डाल फिर तुझको निज स्वरूप स्वयं ही

समझ में आ जावेगा यह ज्ञान मार्ग की पेचीदा सीढ़ी हैं, एक मंज़िल को विधिवत् पूरा करने पर दूसरी मंज़िल का रास्ता स्वयं ही दिखाई पड़ने लगता है। (राजा चरण छूता है) उचित समय पर फिर आऊंगा (जाते हैं)

राजा—(कुछ ठहर कर गाना)

भजन।

प्रभू जू तो कह लाज हमारी।
नील कंठ नर हर नारायण नील वसन१ वनवारी ॥
परम पुरुष परमेश्वर स्वामी पावन पवन अहारी।
माधव महा जोत मद मर्दन मान मुकंद मुरारी ॥
निर्विकार निर्जर निद्रा बिन निर्विष नर्क निवारी।
कृपासिंधु काल त्रयदर्शी२ कुकृत प्रनासन२ कारी ॥
धनुर्वान धृति पानि धराधर अनविकार३ असी धारी।
हो मति मन्द चरण शरण गत कर गहि लेउ उवारी ॥

१ वस्त्र २ सर्वज्ञ ३ पाप ४ तलवार।

दृश्य पहला ।

स्थान—शयन गृह समय रात्री।

राजा—रानी, गुरुजी को आज चार दिन हो गये अभी नहीं आये, कहीं अप्रसन्न तो नहीं हो गये ?

रानी—नहीं महाराज गुरु बड़े कृपालु हैं कोई कारण होगा।

राजा—हां रानी मुझे तो अब उन पर पूर्ण श्रद्धा है।

(कुछ देर दोनों का चुप रहना इतने में मंत्री आते हुये दीख पड़े, रानी का राजा से मंत्री की जांच करने को आज्ञा मांगना और आने पर मंत्री से सवाल करना)

रानी—आवो मंत्री बैठो (मन्त्री दोनों को सर नवाकर बैठता है) कहो क्या हाल है ?

मंत्री—सब आपकी कृपा है।

रानी—(हंसकर) कहिये कुछ खास अर्जी पुरजा पेश करने को है क्या ?

मंत्री—वह तो मेरा काम ही है महारानी जी।

रानी—तुम दिल खोल कर कह सकते हो।

मंत्री—(हाथ जोड़ कर) महारानी जी लोग कहते हैं कि वेदान्त मनुष्य को सूखा बना देता है वेदान्ती अपने कुटुम्बियों पर उचित प्रेम नहीं करता।

रानी—लोगों के कहने पर न जाओ भगवान् रामचन्द्र और श्रीकृष्ण आदि सभी के ज़माने में ऐसे एव निकालने वालों की कमी नहीं थी—उसी बात को पूछो कि तुम्हारे समझ में न आती हो। खैर (कुछ देर रुक कर) यदि कोई भी संसार में हर समय प्रसन्न रह सकता है तो वह एक वेदान्ती ही है—वेदान्ती का प्रेम मूर्खता, नीचता, स्वार्थ और मोह युक्त न रहकर एक रस शान्ति युक्त और शान्तिप्रद हो जाता है उसके प्रेम का घेरा निज शरीर और निज कुटुम्बियों से आगे बढ़ कर सब संसारको प्रेम फांस में फंसा लेता है—जितनी जाइज़ (धर्म युक्त) बातों में एक कुटुम्बी उससे मदद की उम्मेद रखता है उतनी ही हर एक रख सकता है। उसके सभी कुटुम्बी और प्रेम पात्र हो जाते हैं वह यदि गृहस्थ है तो वह अपने इष्ट मित्रों सभी से नीतियुक्त व्यवहार करता है; हंसता, रोता, डाटता और फटकारता हुआ भी खुद सदैव दिलमें प्रसन्न रहता है और फूल की तरह दूसरों को भी प्रसन्नता बांटता है।

मुमुक्षु अवस्थामें कुछ रुखाई आदि हो सकती है। क्योंकि उस दशामें यम नियमसे रहने के लिये उद्योग करना पड़ता है क्योंकि मन फोरन वश में नहीं होजाता है परन्तु वह रुखाई बी० ए० (B. A.) एम० ए० (M. A.) आदि संसारिक उपाधियों (डिग्रियों) के प्राप्त करने के लिये जब प्रत्येक विद्यार्थी में पाई जाती है तब यदि परमानन्द प्राप्त्यर्थ जिज्ञासु में दिखाई पड़ती हो तो क्या हरज है।

मंत्री—महाराज कोई कहते हैं कि वेदान्ती तो खुद ब्रह्म है फिर डर किसका चाहें जो भला बुरा कर्म करें।

राजा—(सरल हास्य के साथ) अच्छा ! (फिर गंभीर होकर) राम २ कैसा अनर्थ है। मंत्री ! डर न रहे मगर प्रेम का क्या हाल हो जाता है ? ईश्वर प्रेमोन्मत्त को तो वही अच्छा लगता है जोकि ईश्वरको अच्छा लगता है, जो ईश्वर दृष्टि में कर्तव्य है, वही उसकी दृष्टि में कर्तव्य है ईश्वरकी दृष्टि ही उसकी दृष्टि है, ईश्वर की मरजी ही उसकी मरज़ी है, क्योंकि जो ईश्वर का आदि अंत है वही उसका आदि अंत है; अनेक नाम रूप होने पर भी वास्तव में जीव ईश्वर एक ही चीज़ है और एक ही स्वभाव वाली है।

मंत्री—महारानी मुझे वहुत अच्छा मालूम हो रहा है परन्तु दो एक शंका और करना चाहता हूँ।

रानी—वड़ी खुशी से कहो—मैं यथा शक्ति उनका उत्तर दूंगी; नहीं फिर गुरुजी तो हैं ही।

मंत्री—(हाथ जोड़ कर) महारानी ईश्वर ने वुरी चीजें क्यों वनाईं और ऐसी हालत में वह उनके भोगने से कैसे मना कर सकता है ?

रानी—(तेज नेत्रों से मंत्री की ओर देखकर) ईश्वर ने भला वुरा अपनी इच्छा से कुछ नहीं वनाया जीव कभी उस चीज़ को भला कह लेता है कभी उसी को वुरा कह डालता है जो कुछ यह सव है वह जीवों की इच्छा का ही फल है ईश्वर तो होटल के मैनेजर की तरह है पार-लियामेन्ट या (व्यवस्थापक है) या यों कहो कि जगन्नाटक का सूत्रधार है, यदि तुम्हें निजस्वरूप के अतिरिक्त और कहीं से आनन्द मिलने का भ्रम हो गया है तो जहां आनन्द समझ में आता हो उसी चीज़ की इच्छा कर सकते हो। वह चीज़ तुमको मिल भी जायगी परन्तु उसकी क़ीमत अदा करते समय रियायत की उम्मेद न करना। वुद्धि के दुरुपयोग करने के दंड से न घवड़ाना ईश्वर परम स्वतंत्र और परमानन्द स्वरूप है उसने होटल

में रहने की और वस्तुओं को इस्तेमाल में लाने की कीमत ऐसी बुद्धिमानी से रक्खी है कि जीव को अंत में होटल (दुनिया) छोड़ कर घर को भाग चलने की ही सूझती है (होटल—संसार; घर—निज स्वरूप)

वास्तव में संसारकी कोई भी वस्तु सबके लिये बुरी या सबके लिये अच्छी नहीं है जिनको कि जीव विषयानन्द में अंधा होकर दुखदाई और कंटक रूप मानता है उन्हीं की बाबत दूसरे क्षण नशा उतरने पर ख्याल करता है कि यदि 'दुख न होता तो सुख कैसे जाना जाता ?' और फिर पवित्र बुद्धि हो जाने पर कहता है कि जिसको मैं मदान्ध होकर बुरा कहता था वास्तव में वही अच्छा है क्योंकि उन्हीं के कारण मैं निज स्वरूप का आनन्द प्राप्त करने को उत्सुक हुआ हूं और प्राप्त करके कृतकृत्य हुआ हूं। बलिहारी उस दुख की जो प्रभु तुम चरणन तक लावे, जैसे एक चोर आदमी अंधेरे में कुए की जगत से टकराकर और उस जगत को और उसके बनाने वालों को उलटी सीधी सुनाता है परन्तु विचार करने पर उसी जगत को चूमकर और उसके बनाने वाले को धन्यवाद देकर कहता है कि यदि यह जगत न होता तो मैं आज कुए में पड़ा २ सड़ रहा होता। सब बुरी चीजें मनुष्य को ईश्वर प्रेम की श्रेष्ठता का इशारा करती हैं और परमशांत के रास्ता पर फिर से हाथ पकड़ कर खड़ा कर देती हैं ।

दुख में बड़े २ गुण हैं दुख ज्ञान की वृद्धि करता है, वैराग्य को उत्पन्न करता है, दुःख से ही तितिक्षा की सिद्धि होती है. योग की उत्पत्ति होती है और नम्रता का उपदेश मिलता है। दुख, दुख को नष्ट करता है क्योंकि दुख से पाप क्षीण होते हैं और पाप क्षीण होने पर सुख की उत्पत्ति होती है। मनुष्य और जाति वा मुल्क सभी की उन्नति के लिये दुःख अत्यन्त आवश्यक है। विना दुख के उत्तम आदर्श आचरण हो नहीं सकता । आचरण रूपी स्वर्ण की शुद्धि के लिये दुखों की भट्टी आवश्यक है । दुख को शान के साथ सहने से ही भगवान राम, कृष्ण, बुद्ध, नानक आज तक पूजे जाते हैं। दुख ही हममें दया, नम्रता, क्षमा, स्वार्थत्याग, दानशीलता का भाव, आत्म विश्वास, आत्म सन्मान और आचरण, वल उत्पन्न करता है। जव एक कष्ट से कभी तुम रुष्ट होते हो कभी उसीको इष्ट बतलाते हो तो फिर ऐसी दशा में ईश्वर क्या करे उसको तो व्यवस्थापक की हैसियत से संत असन्त सभी की जरूरियात (आवश्यकतायें) पूरी करनी है।

मुमुक्षु[१] की दृष्टिमें विषय जन्य सुख[२] मीठे संखियेकी तरह जहरीले और दुःखदाई हैं, अन्त वाले हैं और उन्हीं

१ मुमुक्षु=अपनेको रोगी समझने वाला रोगी २ विषयजन्य सुख=ज़हर।

से बचने के लिये वह उन दुःखों की शरण लेता है जिनकी कि रगड़ से उसके मनका मैल धुल जाता है और ज्ञानी४ होकर परमानन्द को प्राप्त कर लेता है जिसके कि सामने संसार के सुख रूप मीठे संखिये और दुःख रूप कड़वी दवा३ दोनों ही हेय होजाते हैं।

मंत्री—महारानीजी सत्य कहती हैं। (थोड़ी देर चुपचाप बैठ कर और फिर रानी की तरफ़ प्रेम दृष्टि से देख कर कहने लगा) कुछ और पूछ सकता हूँ ?

रानी—(हंस कर) हां, हां।

मंत्री—प्रारब्ध क्या है और कैसे बनता है ?

रानी—(कुछ सोच कर) क्या तुमने सिनेमा देखा है ?

मंत्री—जी हां, सिनेमा एक चरखी होती है जिस पर बहुत लम्बी चौड़ी फ़ीते के मानिन्द (Film) फिल्म लिपटी हुई होती है उस फिल्म पर हज़ारों तसवीरें होती हैं जिस वक्त कि बिजली की रोशनी में चरखी घूमती है तो वह तसवीरें अंधेरे कमरे में टँगे हुये परदे पर अपना अक्स डालती हैं, चलती फिरती मालूम होती हैं और अब तो बातें भी कर सकती हैं।

रानी—यह तसवीरें कहां से आती हैं ?

३ कड़वी दवा = सँसारिक दुख ४ ज्ञानी = स्वस्थ, निरोगता प्राप्त करने वाले।

मंत्री—कोरी film । घुमाया जाता है और एक सूराख द्वारा (Lense) लन्सकी मदद से उस फ़िलमपर सामनेके दृश्यका अक्स डाला जाता है जिससे उस कोरी फिल्म पर उस दृश्यकी तसवीरें खिचती चली जाती हैं अगर एक बड़ी भारी चर्खा को साल भर तक बराबर घुमाया जावे तो उस पर की कोरी फ़िल्म पर तमाम साल के दृश्य चलते फिरते हंसते रोते सभी आजावेंगे।

रानी—तो बस तुम समझो कि हर एक जीव की जन्म से लेकर मरने तक की प्रारब्ध की सब तसवीरें बड़ी भारी फ़िल्म पर खिची होती हैं और उस तसवीर वाली फ़िल्म के नीचे एक कोरी फ़िल्म भी लगी हुई होती है जो कि तसवीर वाली फ़िल्म के साथ २ घूमती है।

ईश्वर इन दोनों फ़िल्म वाली चरखी को घुमाता है और वही जीव उसका खास द्रष्टा होता है जो कि चरखी घुमाये जाने वाले कमरे से ही उन तसवीरों द्वारा पड़े हुये दृश्यों को देखता है। अगर वह जीव अज्ञानी हुआ तो वह अपनी आसक्ति वश उन तसवीरों के देखने में अपने को भूल जाता है और दृश्यों को देखकर क्षण क्षण में सुखी दुःखी होने लगता है और फिर नई नई इच्छायें करता है और ईश्वरसे अपनी इच्छाओंके अनुसार दृश्योंमें आइन्दा के वास्ते रद्दो बदल की प्रार्थना करता है उन प्रार्थनाओं के ही आशय ले लेकर ईश्वर फोटोग्राफर की भांति कोरी

फ़िल्म पर नई २ तसवीरें खेंच देता है और उन सब तसवीरों की ही फ़िल्मको उतार कर ईश्वर उसकी आगामी प्रारब्ध की चरखी पर चढ़ा देता है। इस तरह जीव बार २ नये २ शरीर धारण करता रहता है और नये २ दृश्य, देखता रहता है। यदि जीव ज्ञानी हुआ तो वह उन तसवीरों द्वारा पड़े हुये को देख कर आसक्त नहीं होता और उन दृश्योंको प्रारब्ध वश आया हुआ जान और उनको देखना अपना कर्त्तव्य समझ देखता हुआ भी (थियेटर में ऐक्टर की तरह) अपने स्वरूप को क्षण भर के लिये भी नहीं भूलता और न उन दृश्यों को देख हार्दिक सुख दुख मनाता है और न ईश्वर से किसी किस्म की इच्छा वश होकर उन दृश्यों में आइन्दा के वास्ते रद्दो बदल की प्रार्थना करता है। जिसकी वजह से उसकी आइन्दा (आगामी) की प्रारब्ध वाली कोरी फ़िल्म कोरी ही बनी रहती है जिससे वह महा पुरुष इस जन्म मरण के चक्र से सदा को छुट्टी पाकर ब्रह्म में लीन हो ब्रह्म ही हो जाता है।

(थोड़ी देर ठहर कर)

उस महापुरुष का विश्वास है कि इस दृश्य रूप अंधेरे कमरे में (संसार में) परमानन्द कदापि प्राप्त नहीं हो सकता; जब नहीं प्राप्त हो सकता तो इससे पीछा

छुटा कर परमानन्द प्राप्त करना ही परम कर्तव्य है। इससे पीछा छुटाना तभी हो सकता है जब कि प्रारब्ध रूपी बहीखाते (Account Book) के अनुसार जिस किसी का लेना देना हो उसको ठीक ठीक ले देकर हिसाब बेवाक करदे और आइन्दा न किसी से लेने की इच्छा करे और न किसी को देने की—जिसका कि गुरु कृपा से अंतःकरण इतना शुद्ध हो गया है कि जिसकी वजह से उसको परमानन्द की झलक या हवा लगने लगी है वही ऐसी बेवाकी यथार्थ में कर सकता है और वही नर श्रेष्ठ धन्य है। वह ही अद्वैत तत्त्वको प्राप्त कर लेता है।

मंत्री—रानी के चरण पकड़ता है।

रानी—कहो मंत्री कुछ समझ में आता है?

मंत्री—देवी! खूब समझ में आता है—बड़ा मीठा मालूम पड़ता है। जब हम ईश्वर, जीव, माया प्रत्यक्ष देखते हैं फिर अद्वैत कैसा? ब्रह्म ही है तो भ्रम किसको हुआ?

रानी—जिस बात को तुम पूछते हो उसका यथार्थ में जानना मेरी और तुम्हारी दोनों ही की हद से बाहर है (मन बुद्धि के परे है) जैसे आंख सबको देखती है परन्तु अपने को नहीं देख सकती, जैसे चिमटा (दस्तपनाह) सबको पकड़ सकता हैं परन्तु जो हाथ उसको पकड़े हुये है उसको वह नहीं पकड़ सकता; वैसे ही बुद्धि अपने

निकास की मीमांसा नहीं कर सकती तो भी तुमको ऐसी जगह पहुँचा सकती है कि वहां से तुम विधिवत् नियमानुसार गुरु वचनों पर श्रद्धा रख उनके अनुसार काम करो तो शुद्ध बुद्धि होकर आगे का पता स्वयं ही पा सकते हो। (कुछ देर ठहर कर) जैसे अंधकार और उजाला दो होते हुये भी एक ही वस्तु हैं उजाले के कम होने का नाम ही अन्धकार है (Comparative Terms) उसी तरह ब्रह्म और माया वास्तव में एक ही चीज़ है तुम ब्रह्म को सूर्य—किरणों को जीव और सूर्य के बाहरी घेरे से किरणों के आख़िरी तक माया जाल समझो। यह माया ज़ाल तीन हिस्सों में बटा है। सूर्य के निकट का हिस्सा सतोगुण—किरणों का आखिरी हिस्सा तमोगुण और दोनों के बीच का हिस्सा रजोगुण है जैसे २ किरणें ब्रह्म से दूर होती जाती हैं वैसे २ अन्धकार की मात्रा अधिक होती जाती है (अंधकार=दुख) चूंकि किरणों का स्वभाव आनन्द स्वरूप है इससे वह अंधकार में दुख देख फिर ब्रह्म की ओर लौटती हैं ऊपर को लौटने से चित्त को शान्ति मिलती है और स्वरूप आनन्द मिलता है उसी आनन्द को मन मलीन होने के कारण जीव (किरण) संसार की किसी वस्तु में से आता समझ फिर नीचे अंधकार में गिरने लगता है इस तरह किरणें चढ़ती उतरती रहती

हैं अंत में जब वह बहुत गिर जाती है तो उसको महान् दुख होता है जिसकी कि ठोकर असह हो जाती है और जिससे हृदय की मलिनता धीरे २ घटने बढ़ने के बजाय पपड़ी की तरह बहुत सी एक साथ उतर जाती है इस तरह मल की पपड़ी उतर जाने पर उसको शास्त्रों के और गुरु के वचनों में प्रीति हो जाती है, माया की असलियत समझ में आजाती है जिससे फिर माया जाल में न फंस कर निज स्वरूप आनंद (ब्रह्मानंद) में ही मगन रहता है। जैसे लड़के चकई से खेलते हैं चकई डोरे के सहारे नीचे उतरती है परन्तु उसी डोरे के सहारे उंगली की ठोकर पाकर फिर ऊपर को चढ़ती है और पूरी ठोकर मिलने पर फिर हाथ में आजाती है। वैसेही जीव ईश्वर नियम रूपी उंगली द्वारा दुखों की ठोकर पाकर फिर ऊपर को चढ़ता है और जहां से आया था वहीं जाकर आनंद पाता है। जीव चैतन्य होने से एक बार अपनी ग़लती को अच्छी तरह समझने पर फिर से ग़लती नहीं करता।

राजा—तो फिर मंत्री जी कुछ आप भी सुनाइये।

मंत्री—बहुत अच्छा महाराज (गाता है)।

भजन।

हरि नाम न लेत गंवारा मन सोचत वारम्वारा।
वाजीगर१ डंक वजाया सव लोग तमाशे आया॥
वाजीगर खेल संकेला तव रह गया आप अकेला॥ अरे हरि०
जो दर्शन करना चहिये तो दर्पण मांजत रहिये।
जव दर्पन लगिगई काई-तव दर्श कहां से पाई॥ अरे हरि०

कवित्त।

माया१ तो वही है रज तम सतगुण धार,
नाना रूप नामों में ही उपजे विनाशे है।
जीव तो वही है जो कि अविद्या संयोग पाइ,
भूला निज रूप भ्रम फांस ना निकाशे हैं॥
ईश्वर वो वही निज रूपको न भूलै कभी,
माया गहै माया उसे प्रथक ही भासे है।
व्रह्म तो वही है जो कि सचित आनंद घन,
निर्विकल्प निर्विकार स्वयम प्रकाशे है॥ अरे हरि०

जो प्रभु से मिलना चहिये तो चरण गुरु के गहिये,
जव गुरु दीहति समुझाई तव घट ही परत दिखाई।
जो पार उतरना चहिये-तो खेवट से मिल रहिये,
जव उतरि पतरि भये पारा-तवको हमको संसारा? अरेहरि०

---

१ जीव।

कवित्त ।

पानीके बबूला ज्यों ही पानी में बिलाइ जात,
त्यों ही एक दिन पठ आपहू बिलाइ है।
कहत जो मेरो तात, मात, भ्रात, दारा सुत,
तेरे धन धाम ग्राम काम सो न आइ है॥
पंच भूत पंचीकृत कोश पंच शरीर जो,
तो न हू महेश पंच तत्त्व में मिलाइ है।
तासो भ्रम जाल त्याग भजो शिव सरोज पद,
माया में भुलाइ किम कारज नसाइ है॥ अरे हरि०

राजा—वाह मंत्री, शाबाश !

रानी—तुम धन्य हो मंत्री।

मंत्री—हाथ जोड़ कर सब आपकी ही कृपा का फल है।

(गुरुदेव का आते हुये दिखाई पड़ना। सब का चरण छूना गुरु का आशीर्वाद देना और सब का बैठ जाना)।

राजा—(हाथ जोड़ कर) महाराज मैं दो दिन से आपके दर्शनों को उत्सुक था।

गुरु—इससे तुमको लाभ ही हुआ, मन बुद्धि का रंग ढंग देखने को उचित समय मिला अच्छा अपना हाल कह।

राजा—महाराज मेरा मन भी अब शुद्ध हो गया है।

विदूषक—(हाथ जोड़ कर) भगवन्

पहिले यह मन काग था करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया चुनि २ मोती खात॥

राजा—महाराज मेरी बुद्धि भी अपने भूषणों से सुशोभित है। उसने—

एक ब्रह्म सत सबही असत रूपी विवेक का उबटन१ लगाया है। जिससे कामादिक सब मल छूट गये हैं।

वैराग्य के जल२ से माया को धो डाला है जिससे उसका शरीर पवित्र हो गया है और सत्य में सुरुचि और जगत में अरुचि हो गई है।

उसने षट सम्पति३ रूपी दिव्य वस्त्र धारण किये हैं और पति साथ मिलि होऊं अचल ऐसी मुमुक्षुता की मांग४ उसके सर पर सुशोभित है जो कि अचल शौभाग्य की निशानी है।

गुरु की शरण और उनके उपदेशों को श्रवण रूपी सेंदुर५ लगाया है जो कि जड़ता का जड़ से नाश करने वाला है।

श्रुति के वचन रूप नूपुर६ पहिने हैं जिनकी ध्वनि मात्र से दरिद्रता चली जाती है जहताजहत के यावक७ के लगते ही चित्त में बड़ा उत्साह आगया है जो निश्चल सुख के देने वाला है।

अंतःकरण में मनन रूप अंजन८ लगाया है, जिससे जगत मिथ्या और एक ब्रह्म ही सत्य दीखता है। उसने ध्यान की९ मंहदी लगाई है जिससे तीनों तापों का नाश हो गया है।

क्षमा रूप करणफूल१० धारण किये हैं, जिससे निंदा प्रसंशा एकसी प्रतीति होती है, शान्ति रूप नथ११ नाक में धारण की है जो कि संतोश का सागर और संताप का हरने वाला है।

भगवन् आपकी कृपा से ही उसने धीरज की माला१२ गले में डाल ली है, जिससे चित्त को बड़ा आनन्द रहता है। प्रभो अब मुझे अपने रूप का बोध करादो यही एक मात्र इच्छा है।

विदूषक—(संत से हाथ जोड़ कर) महाराज अब क्या देरदार है अबतो बेड़ा पार है, बस महाराज की कृपा की दरकार है उसकी भी भरमार है।

गुरु—(प्रेम दृष्टि से) वत्स ! तेरी बुद्धि पर १२ शृंगार तो हो गये केवल ४ की और आवश्यकता है वह भी आज मैं तुझे देता हूं। सुनः—

हरि गीत छंद।

अनुभव अतर स्वच्छन्द तर शुचिवास कर दुख द्वन्दहा।
समता महक फैली अधिक छः चार दिक यश छारहा॥

बीड़ा चबाय प्रसन्नता लावण्यता मुख की बढ़ी ।
रवि की चमक शशि की दमक कान्ती कनक फीकी पढ़ी ॥
नहिं भाव न अभाव ही घूंघट सुहाय सुभाव ही ।
पति पत्नि एक न भिन्नता न अभिन्नता जावे कही ॥
सुसमाधि नित त्रिपुटी रहित शैया अमित अद्वैतता ।
आनन्दमय नहिं होय क्षय दायिन अभय सौभाग्यता ॥

राजन् अब तुझे तेरा स्वरूप अच्छी तरह समझ में आजावेगा जो माया तुझको अज्ञान का लबादा (ओवर कोट) पहिने देख मनमाना नाच नचाती थी वह अब चेरी के समान तेरी बलैया लेगी राजन्—

माया छाया एक सी बिरला जाने कोइ ।
भगता के पीछे पड़े—सन्मुख भागे सोइ ॥

अब तू ज्ञानी का निश्चय सुनः—

हरि गीत छंद ।

ज्ञानी अमानी निस्पृही सब कामनायें त्यागता ।
मिथ्या जगत को जान के उसमें नहीं अनुरागता ॥
सचित तथा आनन्दघन निज रूप में मन लाय है ।
विष जानकर सारे विषय नहिं पास उनके जाय है ॥ १ ॥
सुख को नहीं सुख मानता दुखसे नहीं होता दुखी ।
दोनों ही कल्पित मानिके, निर्द्वन्द रहता है सुखी ॥
करता सभी व्यवहार है रहता सभी से है जुदा ।

देहेन्द्रियों से कार्य कर निर्लेप मन से है सदा ॥ २ ॥
हो शत्रु अथवा मित्र हो दोंनों उसे हैं एक से ।
सब से ही हिल मिल के चलें नहिं काम राग रु द्वेषसे ॥
डूबा रहै आनन्द में खाता रहे ठंडी हवा ।
षट रस मिले तो वाह ! वा टुकड़े मिलें तो वाह ! वा ॥ ३ ॥
जो इन्द्रकी पदवी मिले उसको नहीं कुछ हर्ष हो ।
जाना पड़े जो नर्क में तो भी नहीं आमर्ष हो ॥
निज रूप से व्यतिरेक सब निश्चय हुई माया जिसे ।
होवे भला फिर कब रुची झूठे पदारथ में उसे ॥ ४ ॥
वो ही चतुर नर धन्य है जिसकी हुई ऐसी स्थिती ।
पूजे उसे ऋषि सिद्ध मुनि ब्रह्मादि सुर योगी यती ॥
है जन्म उसका ही सफल जीता उसे ही जानिये ।
कौशल्य ! जो है ब्रह्मवित् सो ब्रह्म निश्चय मानिये ॥ ५ ॥

राजन् इस संसार में तरह २ के जीव हैं कोई राजा कोई प्रजा कोई नंगा कंगाल कोई सेठ साहूकार परन्तु शान्ति का कहीं पता नहीं है इसमें संदेह नहीं कि अमीरी के साथ २ जीव को तकलीफ मालूम करने की शक्ति तीव्र और उसके सहने की शक्ति मंद होती जाती है शान्ति का घर निज स्वरूप ही है और उसकी प्राप्ति के लिये संसार की कोई वस्तु साधक या बाधक वास्तव में नहीं है जैसे हिलते हुये जल पर अपना प्रतिबिम्ब नहीं

दीखता उसी तरह इच्छाओं द्वारा चंचल चित्त पर आत्म स्वरूप आनन्द का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता, इसलिये तू इच्छा रहित होजा, प्रारब्ध वश जो कार्य सामने आवे उसको उत्साह सहित अपनी बुद्धि अनुसार फल की इच्छा रहित हो किया कर, एक ग्वालिन अपनी सखी से कहती है:—

आंख से देखो सखी परि नारि वेजाना हिले।
बात भी करती रहो पर ध्यान मटकी[1] का रहे॥

इसी तरह तू प्रारब्ध प्रेरित संसार के कार्य देह धरे का कर्तव्य जान करता हुआ भी ऐक्टर की भांति अपने लक्ष का सदा ध्यान रख उससे कभी न हट बस यही परमानन्द के खजाने की कुंजी है जो मैं आज तुझे देता हूँ। यह संसार तेरा नहीं सब कल्पित है मिथ्या है क्योंकि संसार को तू मन इन्द्रियों से बने हुये यंत्र द्वारा देखता है जो कि अज्ञानकृत है फ़क़त तू ही एक अविकारी अव्यक्त अक्रिय अद्वेत और सच्चिदानन्द है। तू ही सबका अधिष्ठान आदि अंत रहित है (विचित्र हंसी हंसते हुये और राजा की आंखों की तरफ़ दृष्टि डालते हुये) सबसे परे सर्वत्र तू ही तू! तू ही तू है!!

राजा—(हाथ जोड़ कर) गुरुदेव! आज आपका एक २ शब्द मुझ में एक नई शक्ति पैदा कर रहा है वाह! वा! सर्वत्र मैं ही मैं तो हूँ वाह! वा!! (गुरु के चरण पकड़ कर और उठ कर स्तुति करता है)

[1] मटकी = निज स्वरूप

(पिस्तौल की आवाज़ के साथ मंत्री का एक पख़वाईसे लोप हो जाना)

त्रिभंगी छंद ।

जय २ गुरु स्वामी अंतर्यामी सच्चित आनंद राशी ।
सचराचर नायक जन सुख दायक माया पर अविनाशी ॥
जय करुणा सागर सब विधि नागर शरण पाल भगवाना ।
भक्तन हितकारी नर तनुधारी गावत वेद पुराणा ॥१॥
जय भव भय भंजन नित्य निरंजन गुणातीत गुणखानी ।
जय अचल अकामा पूरण कामा मानद आप अमानी ॥
जय कमल विलोचन संशय मोचन ब्रह्म रूप जगत्राता ।
परि पूरण त्यागी जन अनुरागी चारि पदारथ दाता ॥२॥
जानत सब विद्या हरत अविद्या अकल सकल कल पंडित ।
नहिं लेश विषमता अविचल समता यक रस ज्ञान अखंडित ॥
कोमल चितयोगी विषय वियोगी, सुख कर चिंता हरता ।
निज सेवक संगी सदा असंगी कर्ता महा अकर्ता ॥ ३ ॥
निर्भय भय नाशक ज्ञान प्रकाशक सेवत नर बड़भागी ।
ब्रह्मादिक देवा करते सेवा चरण कमल अनुरागी ॥
प्रभु निशदिन ध्याऊं गुण गण गाऊं कामादिक हर लीन्हा ।
यह मनक्रम वाचा सेवक सांचा जन अपना कर लीन्हा ॥४॥
पामर अविचारी मिथ्याचारी सत्य असत्य न जाने ।
सुतवित लिपटाने निपट अयाने किं सदगुरु पहिचाने ॥
नहिं सदगुरु चीन्हा अति ही दीना लख चौरासी भटकते ।
गुरु पद चित दीना परम प्रवीणा नहिं कौशल्य अटकते ॥५॥

(यह कह कर गुरु चरणों पर गिरता है, गुरु का राजा के सर पर हाथ रख अच्छा २ कह एक विचित्र भाव भरी दृष्टि डालते हुये दाहिनी पखवाई से चला जाना) ।

राजा—(गाता है) ।

ज्ञानी का विनोद ।

(१)

कहते जिसे हैं ईश वह है मात्र मेरी भावना ।
मैं ही न हूं तो होय किससे ईश की संभावना ॥
प्राणी अनेकों जात के मेरे ही सब आकार हैं ।
व्यापार लाखों प्राण के मेरे हि तो व्यापार हैं ॥

(२)

सर्वत्र मैं ही व्याप्त हूं कहिं बिम्ब कहि आभास हूं ।
मैं दर्श द्रष्टा दृश्य हूं मैं दूर मैं ही पास हूं ॥
सत या असत कुछ या न कुछ जो कुछ कि है मैंहूं सभी ।
हो दिव्य दृष्टी गुरु कृपा से दीखता हूं मैं तभी ॥

(३)

मैं ही कहीं पर सूर्य हूं मैं ही कहीं अणु रूप हूं ।
सागर बनूं मैंही कही कहिं मैं ही बिन्दु स्वरूप हूं ॥
हूं चर कहीं कहिं हूं अचर कहिं ज्ञान कहिं अज्ञान मैं ।
संसार दृष्टी से छुपा आता नहीं हूं ध्यान में ॥

(४)

सच्चित तथा आनन्द में छिपसा गया था भूल से ।
कहिं नाम में कहिं रूप में ढक जाय ज्यों रवि धूल से ॥
उतरी अविद्या राक्षसी अब आप को मैं जानता ।
जैसे गले का हार त्यों ही प्राप्त—प्राप्ती मानता ॥

(५)

जब बाह्य दृष्टी छूट के दृष्टी हुई अंतर मुखी।
तब आपको मैं ने लखा स्वच्छन्द सुखि से भी सुखी ॥
एकान्त में वैठा हुआ भी वाक्य सुनकर धारता।
चुप चाप हूँ जिव्हा विना तोभी वचन उचारता॥

(६)

मित्रो कभी मत पूछना मैं जीव हूं या ईश हूं।
मैं बंध मैं ही मोक्ष हूं मैं जीव मैं विश्वेश हूं ॥
मैं बांधता मैं ही वंधू मैं छूटता मैं छोड़ता।
देता हूं उत्तर सर्व को नहिं मुख किसी से मोड़ता॥

(राजा का कुछ देर कर खुश खुश टहलना और फिर जाना)

गाना।

मैं ही स्तुति मैं ही करता किसे सुनाऊं अपना गान।
मैं ही गाता मैं ही सुनता—मैं ही लै हूँ मैं ही तान ॥
मैं ही अपार हूँ संसार पार हूँ—निर आकार हूँ,
हे जगदीश यही अशीष,
है भव भय भंजन नित्य निरंजन इस सब का होवे कल्यान;
मैं ही स्तुति मैं ही करता........................... ॥

(पिस्तोल की आवाज के साथ बुद्धि का एक पखवाई से चला जाना और राजा का अकेला रह जाना)

परदे का धीरे २ गिरना।

समाप्त